B.A. Part I Hons
Paper - II (A) Group
Date - 1.7.2020

Paper - IInd

Q:→ Discuss the Theories of origin and development of Varna System in Ancient India.

Ans.→ प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास में वर्ण एवं जाति का विशेष स्थान रहा है। मानव की मनोवैज्ञानिक सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में ही रखकर वर्ण एवं जाति का संभवतः आरंभ किया गया था। इसका उद्देश्य समाजिक व्यवस्था एवं संगठन को व्यक्तित्व प्रदान करना था। कतिपय विद्वानों की यह राय है कि ब्राह्मणों ने अपनी आर्थिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वर्ण एवं जाति की व्यवस्था समाज में की थी।

वर्ण एवं जाति दोनों स्वतंत्र शब्द है। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृ वरणे' अर्थात वरी धातु से हुई है जिसका अर्थ चुनना या वरण करना होता है। यह शब्द 'वृ' धातु से निकला है जिसका भी मतलब चुनना होता है। वर्ण और वरण शब्दों में समानता भी है। संभवतः वर्ण से तात्पर्य किसी विशेष व्यवसाय के चुनने से है। समाज शास्त्रीय भाषा में वर्ण का अर्थ वर्ग से है जो अपने चुने हुए विशेष व्यवसाय से सम्बद्ध है। वास्तव में वर्ण उस समाजिक वर्ग को और इंगित करता है जिसका समाज में विशेष कार्य और स्थान है जो अपनी इन्हीं आवश्यकताओं के कारण समाज के अन्य वर्गों अथवा समूहों से सर्वथा अलग होता है तथा अपने हितों तथा स्थितियों के विषय में जागरूक होता है। P.V. Kane के अनुसार वर्ण की धारणा वंश संस्कृति चरित्र, स्वभाव एवं व्यवसाय पर मूलतः आधारित है। इसमें व्यक्ति की नैतिक, बौद्धिक, योग्यता का समावेश होता है और यह स्वभाविक वर्गों की व्यवस्था का सूचक है। स्मृतियों में भी वर्णों की व्यवस्था का सूचक है। स्मृतियों में भी वर्णों का आदर्श कर्तव्यों पर समाज या वर्ग के उच्च मापदण्ड पर बल देना है। जन्म से प्राप्त अधिकारों अथवा विशेषाधिकार पर वर्ण व्यवस्था अधिक बल नहीं देती है। परन्तु इसके विपरीत जाति व्यवस्था जन्म एवं आनुवंशिकता पर जोर देती है और बिना कर्तव्यों के आचरणों पर बल दिये जाति व्यवस्था केवल विशेषाधिकार पर ही आधारित है।

जाति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'जन' धातु से हुई है जिसका अर्थ जन्म लेना होता है।

Scanned with CamScanner

इसका संबंध प्रजातीय अथवा जन्मगत आधार पर स्थित व्यवस्था से माना जा सकता है। एलकैमर ने "History of Caste in India" में लिखा है कि जाति को एक सामाजिक समूह के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इसमें दो विशेषताएँ पायी जाती है। एक तो यह कि जाति की सदस्यता उन ही व्यक्तियों तक सीमित रहती है जिसमें उसका जन्म होता है और दूसरा यह कि इसके सदस्य अनिवार्य सामाजिक नियम के कारण दूसरे समूह में विवाह करने से रोक दिये जाते है। परन्तु जाति प्रथा में गतिशीलता भी है। यह सही है कि इसका आधार जन्म है जो उसकी सामाजिक परिधि को बाधक करती है। यह व्यवस्था अपने सदस्यों पर खान-पान, विवाह, सामाजिक सहवास आदि संबंधों कुछ नियंत्रण लगाती है। इस प्रकार हम देखते है कि जातियों का विकास प्राचीन काल में विभिन्न जाति समूह के रूप में, जन्म के आधार पर हुआ जिसका स्वतंत्र विकास शील जीवन एवं अपनी पृथक संस्कृति थी। N.K. Dutta ने ~~कहा है कि~~ Origin and growth of Caste in India में प्राचीन काल की जाति प्रथा की निम्नलिखित छह व्यवस्थाओं को बताया है — ① एक जाति का सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकता।

② खान-पान में विभिन्न जातियाँ एक दूसरे से प्रतिबंध रखती है।

③ अधिकांश जातियों के व्यवसाय निश्चित होते है।

④ जातियों में ऊंच-नीच का भेद-भाव था जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च होती थी।

⑤ मनुष्य की जाति इसके जन्म से निर्धारित होती थी, जाति नियम तोड़ने वाले को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था।

⑥ जाति की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर आधारित थी। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति अपनी जाति को आसानी से परिवर्तित नहीं कर सकता था। P.V. Kane का भी यही विचार है कि जाति व्यवस्था जन्म एवं आनुवंशिकता पर जोर देती है और बिना कर्तव्यों के आचरणों पर बल दिये केवल विशेषाधिकार पर ही आधारित है। डा० घूर्ये ने Caste Class and Occupation में जाति व्यवस्था में ~~संख्यात्मक~~ संरचनात्मक पक्षों पर विचार करते हुए जाति व्यवस्था के पृथकत्व, संगठन, खान-पान और

सामाजिक एवं धार्मिक अयोग्यताएँ तथा निर्योग्यताधिकार अवलम्बन का बंधन तथा विवाह का प्रतिबंध आदि उनकी प्रधान विशेषताएँ बतायी हैं।

उत्पत्ति :→ वर्ण व्यवस्था एवं जातियों की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर समाज शास्त्रियों ने विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या की है। सभी वर्णों के कर्मों और कर्तव्यों को संभवतः समाज के ब्राह्मण, क्षत्रियों ने अपनी आर्थिक आकांक्षाओं को पूर्ति के लिए वर्ण एवं जाति व्यवस्था की व्यवस्था की। परन्तु कतिपय विद्वानों का मत है वर्ण की व्यवस्था कर्तव्य निर्धारण में गुणात्मकता, व्यवसायात्मकता और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया गया। सभी वर्ण के लोग अपने-अपने कर्मों को स्वच्छन्दता और निष्ठापूर्वक करें। इसके लिए धर्म की सहायता ली गयी तथा सभी वर्णों के कर्तव्यों को धर्म के अन्तर्गत माना गया। वर्ण व्यवस्था एवं जाति की उत्पत्ति के संदर्भ में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रस्तुत किये जाते हैं।

① रंगों से संबंधित उत्पत्ति का सिद्धान्त :→ वर्ण का एक अर्थ रंग भी है। इसी रंग के अर्थ में वर्ण का प्रयोग ऋग्वैदिक काल में हुआ है। ऋग्वैदिक काल में केवल दो वर्ण थे। एक आर्य वर्ण और दूसरा उसके विरोधी को दास या दस्यु कहा जाता था। यह भेद केवल रंग एवं संस्कृति को लेकर था। ऋग्वेद के प्रथम भाग में आर्यों को गौर वर्ण का कहा गया है तो दूसरी ओर दास को कृष्ण वर्ण का कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वैदिक काल में रंग के आधार पर वर्ण का विभाजन हुआ। बाद में चलकर वर्ण का प्रभाव विभिन्न वर्गों एवं समूहों को निर्धारित करने के लिए चार विभिन्न वर्णों का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थों के अनुसार चार वर्णों के लिए समाज में भिन्न-भिन्न रंग निश्चित किये गये जिससे उनके सदस्यों को एक ढंग से विशिष्टता दी जा सके। यही कारण है कि रंगों के आधार पर ही आर्य एवं दास को विभिन्नता ऋग्वेद के विभिन्न स्थलों में देखने को मिलती है। वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के विषय में यह कहा गया है कि इसका उद्भव रंग में हुआ था। इसके अनुसार मनुष्यों के त्वचा के विभिन्न रंग वर्ण के परिचायक थे। महाभारत के शान्तिपर्व में यह उल्लिखित है कि ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की जिनका रंग

क्रमशः श्वेत, लाल, पीत (पीला) और काला था।

"ब्रह्मणानां तु सेनी क्षत्रियाणां तु लोहिता।
वैश्यानां पीतको वर्ण शुद्रणा मासितस्तथा॥

किन्तु रंग का यह सिद्धान्त त्वचा के रंग को उतना व्यंजित नहीं करता, जितना मनुष्य के कर्म और गुण को। वस्तुतः श्वेत रंग का तात्पर्य सत्व गुण था, लाल रंग का रजोगुण, पीले रंग का रजो और तमो गुण तथा काले रंग का तमोगुण। रंगों पर आधारित ये गुणात्मक अभिव्यक्तियाँ मनुष्य की त्वचा के रंग को नहीं उद्घाटित करती बल्कि उनके कर्म प्रधान गुण को।

दैवी अथवा परम्परागत सिद्धान्त :→ प्राचीन धर्म शास्त्रों में वर्णों को उत्पत्ति ईश्वर कृत अथवा दैवी मानी गयी है। तथा उनके विभाजन को आदिपूर्वक पावन माना गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्ण संबंधी उत्पत्ति के विवरण को प्रस्तुत किया गया है। उसके अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई थी। विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जाँघ से वैश्य तथा पैर से शुद्र उत्पन्न हुए।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरुतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शुद्रो अजायतः॥

इससे यह प्रतीत होता है कि समाज को चार भागों में विभाजन अत्यंत प्राचीन है तथा उसे स्थाई करने का प्रयास किया था। यह स्थाई कर्म अथवा विराट पुरुष —

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं च्यच्च भव्यम्॥

(हजार सिर, हजार आँखों और पैरों वाला था जो भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।)

जिस प्रकार शरीर में मुँह, बाहु, जाँघ और पैर का महत्व है उसी प्रकार समाजरूपी शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र अंग हैं।

सभी अंगों का शरीर में प्रधान स्थान होता है तथा किसी एक अंग के बिना शरीर की स्थिति असामान्य हो जाती है, उसी प्रकार किसी एक वर्ण के बिना समाज की स्थिति भी कमजोर हो जाती है। क्योंकि शरीर के परिचालन में सभी अंगों का समान योग और महत्व है।

वर्ण व्यवस्था का यह दैवी सिद्धान्त इसलिए प्रतिपादित किया गया ताकि ऊँचे वर्ण के ब्राह्मण और क्षत्रिय

वैश्य एवं शूद्र वर्ण के लोगों का अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए शोषण करते रहे। इसलिये ब्राह्मण पंडितों ने वर्ण व्यवस्था के उत्पत्ति के ईश्वरीय सिद्धान्त को व्याख्या आर्थिक कारणों से प्रेरित होकर किया।

3. श्रम विभाजन का सिद्धान्त और उद्योग :→ वैदिक काल में आर्य जन साधारण स्थान पर बस गये तो उन्होंने अपने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के निदान के लिए श्रम विभाजन के सिद्धान्त को अपनाया। जो अध्ययन-अध्यापन पुरोहित कार्य में संलग्न रहते थे वे ब्राह्मण कहलाये तथा जो शासन एवं सैनिक कार्य में संलग्न रहते थे वे क्षत्रिय कहलाये जो कृषि, पशुपालन एवं व्यापार उद्योग धंधों करते थे वे वैश्य कहलाये। तीनों वर्गों की सेवा करने वाले को शूद्र कहा जाता था। आरंभ में ये वर्ग के रूप में थे। परन्तु बाद में ये वर्ण कहलाये। आगे चलकर अनेक उद्योगों एवं शिल्पों के उद्भव के कारण विभिन्न वर्गों की उत्पत्ति हुई जो बाद में जातियों के रूप में परिणत हो गयी।

4. गुण का सिद्धान्त :→ वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के मूल में गुणों को भी आधार बनाया गया है। गीता के अनुसार मनुष्य अपने गुणों से महान होता है न कि अपने वंश अथवा परिवार। प्रकृति ने तीन प्रकार के गुण - सत्व, रज और तम प्रदान किये हैं। ब्राह्मण में सत्व गुण की अपेक्षा की गई है तो क्षत्रिय के लिए रजो गुण की वैश्य के लिए तमो और रजो दोनों गुणों की अपेक्षा की गयी है तथा शूद्र में तमो गुण माना गया है। इन्हीं गुणों में मनुष्य अपना विकास करता है। इन तीनों गुणों में सत्व गुण ही आदर्श माना गया है। मनु ने भी तीन प्रकार के गुणों की चर्चा की है — सतो गुण, रजो गुण और तमो गुण। सत्व गुण ज्ञान-समन्वित, रजो गुण राग-द्वेष युक्त तथा तमो गुण प्रतिकूल ज्ञान से युक्त था।

(5) जन्म का सिद्धान्त :→ वर्णों की उत्पत्ति जन्म से मानी गयी है। ब्राह्मण परिवार में जन्मा व्यक्ति अयोग्य और अज्ञानी होकर भी पूजनीय माना जाता था तथा चारों वर्णों में ऊँचा समझा जाता था। इस प्रकार वर्ण का आधार जन्म माना गया न कि कर्म। ऐसा प्रतीत होता है कि चारों वर्ण जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहे जाने लगे। उद्योग धंधे वंशानुगत हो गये। आगे चलकर अनेक जातियाँ तथा उपजातियाँ बनी परन्तु उनका आधार वंशानुगत हो गया।

Scanned with CamScanner

6. मिश्रित विवाह एवं वर्ण शंकर से जाति की उत्पत्ति :→
मिश्रित विवाह एवं वर्ण शंकर प्रणाली से भी अनेक जातियों एवं उपजातियों की समय-समय पर स्थापना हुई। वैदिक काल में आर्यों ने दासों को जीतकर उन्हें अपने समाज में सम्मिलित किया और वे शूद्र कहलाये। उनमें चार प्रकार के विवाह को मान्य किया गया। आर्य पुरुष का विवाह शूद्र कन्या के साथ होने लगा जिसे समाज ने मान्य किया तथा ऐसी ~~संतति~~ संतति को अनुलोम जाति कहलायी। शूद्र पुरुष से उत्पन्न ब्राह्मण कन्या को संतान चाण्डाल कहलायी। इस काल में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह की प्रथा भी चल पड़ी तथा उसे धर्म शास्त्रों ने मान्यता प्रदान की। इन अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह के कारण विभिन्न जातियों जैसे अम्बष्ठ आयोगव उग्र कर्ण, चाण्डाल, निषाद, क्षत्र और सैरिज थी। ये जातियों वर्ण शंकर कहलायी।

7. विदेशी आक्रमणकारियों से जातियाँ :→
भारत में समय-समय पर शकों, विदेशी जातियों के आक्रमण के बाद में नयी जातियों का उदय हुआ। कतिपय विद्वानों का कथन है कि राजपूत जातियाँ जैसे - प्रतिहार, परमार, चौहान, चालुक्य, गुहिल, राठौर तथा कछवा विदेशियों की संतान है। ब्राह्मण पुरोहितों ने हवन और यज्ञ द्वारा उन्हें पावेत्र करके हिन्दू समाज में सम्मिलित कर लिया तथा ये क्षत्रियों के रूप में प्रसिद्ध हुए।

8. स्थानों के आधार पर जाति के नाम :→ कुछ जातियों के नाम स्थान के आधार पर भी मिलते हैं। मगध और कुछ एक जातियों के नाम प्रादेशिक आधार पर रोहित होते हैं। वैदिक काल में मगध और विदेह आर्यावर्त के बाहर स्थित थे। धर्म शास्त्रों में मगध और कुछ एक जातियों को शूद्रों के अन्तर्गत रखा गया है। स्थान के आधार पर भी जातियों की उत्पत्ति हुई जैसे - खण्डेवाल से खण्डेला की। वैश्यों की अग्रवाल की अग्रोहा है।

वर्ण एवं जाति का विकास एवं उत्थान :→ वर्ण एवं जाति का विकास और उत्थान लगातार होता रहा। प्रत्येक युग में वर्ण एवं जाति की अपनी-अपनी विशेषताएँ रही है। अपने आर्थिक उपक्रमों से प्रेरित होकर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ण एवं जाति व्यवस्था को जटिल बना दिया तथा इसके बंधन के नियम को कठोर बना दिया।

Scanned with CamScanner

ऋग्वेद काल में दो वर्ण थे – आर्य और दास
यह भेद केवल रंग और संस्कृति को लेकर था। ऋग्वेद काल में जाति प्रथा के अस्तित्व के बारे में विद्वानों में प्रभाव मतभेद है। दत्त एवं घुर्ये तथा अन्य कई विद्वानों के अनुसार ऋग्वैदिक काल में जाति प्रथा विद्यमान थी। इसलिए कि ऋग्वेद के पुरुष सुक्त में ब्राह्मण राजन्य, वैश्य एवं शुद्र का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (के 8-33 तथा 16-18) में ब्रह्मा इन्द्र एवं विश के नामों का उल्लेख है। परन्तु इसी कोटि के विद्वानों में जिमा कोलब्रुक, मैक्समूलर तथा P.V. Kane के अनुसार ऋग्वैदिक काल में जाति प्रथा का कोई अस्तित्व नहीं था। दत्त एवं घुर्ये के जाति प्रथा की उपस्थिति के मत का खंडन करते हुए मैं विद्वान लिखते हैं कि – ऋग्वेद का पुरुष सुक्त ऋग्वेद में बाद में जोड़ा गया। पुरुष सुक्त में ब्राह्मण राजन्य, वैश्य एवं शुद्र का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर वर्ण का प्रयोग नहीं किया है। ऋग्वेद में पुरुष सुक्त को छोड़कर कहीं भी वैश्य एवं शुद्र शब्द नहीं आये हैं यद्यपि ब्राह्मण क्षत्रिय शब्द का ऋग्वेद में प्रयोग अनेक बार हुआ है और उसका संबंध वर्ण से नहीं था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि विश शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है।

विश का प्रयोग

विश का अर्थ है जनसमूह। ऋग्वेद में मानुषी विशः दासी विशः तथा दैवीनाम् विशः का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के 33-18 में विश का प्रयोग साधारण जन के रूप में किया गया है जो कृषि एवं पशुपालन करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्य लोग संभवतः ऋग्वैदिक काल में विश तथा वैश्य कहे जाते थे। अधिक संख्या में वैश्य का उल्लेख ~~मिलता~~ इसलिए नहीं मिलता है क्योंकि हम जानते हैं कि इस काल में आर्य लोग प्रारंभिक रूप से कबीले थे। यद्यपि वे विकसित समाज के थे लेकिन कृषि एवं उद्योग का अंगों की उपस्थिति के कारण उनका समाज पूर्ण वास्तविक धरातल पर नहीं पहुँच पाया था। इसलिये उन्होंने विभिन्न वर्णों का उल्लेख अनेक बार नहीं किया। दूसरी बात यह है कि उत्तरवैदिक कालीन ग्रंथ अथर्ववेद में चार वर्णों का उल्लेख स्पष्ट रूप से अनेक बार हमें देखने को मिलते हैं। किसी भी वर्ण की उत्पत्ति अचानक नहीं होती। वर्ण एवं जाति की उत्पत्ति के विकास का परिणाम होता है। इन सभी प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः पूर्व वैदिक काल में भी आर्य समाज चार वर्णों में विभाजित था भले ही इसमें जटिलता न हो।

Scanned with CamScanner

उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्य तिनिज वर्गों में बँट गया था। P.V. Kane के अनुसार — "उनकी जाति का निर्धारण बहुत कुछ जन्म के आधार पर मान लिया गया था। इस समय के लिये ग्रंथों में उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का अलग-अलग उल्लेख मिलता है। वर्ण का निश्चित प्रयोग जाति के अर्थ में किया जाने लगा। यह व्यवस्था इस काल में इतनी सुदृढ़ हो गयी कि देवताओं का भी जाति विभाजन कर दिया गया। अग्नि एवं बृहस्पति ब्राह्मणों के देवता थे। इन्द्र वरुण और यम क्षत्रियों का देवता था। वसु, रुद्र, विश्वेदेव एवं मरुत वैश्य थे तथा पूषा शूद्र थे।

बौद्ध काल में वर्ण एवं जाति व्यवस्था :→ इस काल में वर्ण एवं जातिगत व्यवस्था वंशानुगत हो गयी। ब्राह्मणों की प्रभुता कायम हो गयी थी जिसका लोगों ने विरोध करना शुरू किया था लेकिन क्षत्रियों की प्रभुता भी इस काल में कायम हो गयी थी। महात्मा बुद्ध पूर्वजन्म में क्षत्रिय होना बताते थे न कि ब्राह्मण। फिक के अनुसार "जातकों में ब्राह्मणों के वाद्य आडम्बर का विरोध किया गया है। इस काल में वैश्य सजातीय नहीं रहे क्योंकि वे विभिन्न उद्योग व्यवसाय करते थे। उनकी अनेक जातियाँ और उपजातियाँ बन गयी। वैश्यों को गृहपति कौटुम्बिक श्रेष्ठि (सेठ) के जिनका राजदरबार में अधिक सम्मान था। शूद्रों की दशा इस काल में उत्तम थी जिसमें चाण्डाल की दशा शोचनीय थी।

सूत्र और स्मृति साहित्य में जाति व्यवस्था का प्रसार :→ सूत्र एवं स्मृति काल में जाति व्यवस्था और भी जटिल हो गयी। आप स्तम्ब, बौधायन, वशिष्ठ आदि में वर्णों के कर्तव्य विशेषाधिकार एवं उपयोगिताओं के बारे में अनेक विवरण दिये हैं। मनु ने भी विभिन्न वर्ण व्यवस्था को दृढ़ बनाया। वर्ण व्यवस्था का आधार पूर्णतः जन्मगत इस काल में हो गया था लेकिन आपद् धर्म में इस काल के व्यवस्थाकारों के अनुसार अपने से नीचे वर्ण के कर्म का अनुशरण कर सकता था परन्तु निम्न वर्ण का व्यक्ति उच्चतर वर्ण के कामों को नहीं कर सकता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी चार वर्णों के व्यापित कर्त्तव्यों पर बल दिया गया है। इस काल में भी विभिन्न वर्णों के अपने-अपने क्षेत्र में विशेषाधिकार थे। कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि वैश्यों के विशेषाधिकार थे।

Scanned with CamScanner